

## प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का स्वरूप, उद्देश्य एवं अर्वाचीन उपादेयता

डॉ. नवीन चंद  
सहायकाचार्य, संस्कृत-विभाग,  
एस. एल. बावा डी.ए.वी. कॉलेज,  
बटाला-143505

प्राचीन काल से ही शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का माध्यम रही है। शिक्षा शब्द को व्यापक एवं संकुचित दोनों रूपों में व्यवहार में लाया जाता है। व्यापक रूप में शिक्षा मनुष्य के आत्मिक विकास की वह गति है जो जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यंत चलती रहती है। संकुचित अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य जीवन की उस अवस्था विशेष से है, जिसमें मनुष्य निश्चित अवधि में गुरु के सान्निध्य में अथवा शिक्षण-संस्था में अपेक्षित ज्ञान को प्राप्त करता है। शिक्षा ज्ञान-प्रकाश का वह स्रोत है जिससे मनुष्य सभी अर्थों को समझने में समर्थ हो जाता है।

**क) प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप-** शिक्षा पद की निष्पत्ति शिक्ष धातु से होती है जिसका अर्थ है, विद्या को प्राप्त करना ( शिक्ष विद्योपादाने)। छात्र किसी भी माध्यम से, गुरुजनों से, स्वाध्याय से अथवा अपने अनुभवों से जो कुछ सीखता है, वह विद्या के अंतर्गत आता है। शिक्षा पद का प्रयोग प्राचीन काल में एक विशिष्ट अर्थ में किया जाता था।

**स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा<sup>२</sup>।**

**वर्णः स्वरः मात्रा बलं साम संतानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः<sup>३</sup>।।**

अर्थात् स्वर तथा वर्ण के उचित उच्चारण के ज्ञान प्राप्त करने को शिक्षा कहते हैं। वेदों के सुस्वर पाठ को महत्त्व दिए जाने के कारण उस काल की शिक्षा को ऐसा नाम दिया गया था। इस प्रयोजन के लिए अनेक ग्रंथों की रचना हुई जैसे पाणिनीय शिक्षा इत्यादि। प्राचीन काल में शिक्षा के अंतर्गत चरित्र-निर्माण को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता था। ‘विद्या ददाति विनयम्’ इत्यादि उक्तियाँ इसकी स्पष्टतया द्योतक हैं। स्वामी दयानंद के अनुसार ‘जिस से विद्या, सभ्यता, धर्म, जितेन्द्रियता